

Prof. Shashi Sharma, Principal  
Professor, Department of Political Science  
e-mail: [prof.shashisharma@gmail.com](mailto:prof.shashisharma@gmail.com)

## **Political Sociology, PAPER VII**

### **Course Content-12: 'Relationship between Politics and Society in India'**

#### **भारतीय राजनीति में भाषाकी भूमिका (Role of Language in Indian Politics)**

भारतीय सामाजिक संरचनान्तर्गत विविधता में एकता का एक महत्वपूर्ण तत्व भाषा है, इसलिए भाषा और राजनीति की अन्योन्यक्रिया का राजनीतिक संस्कृति के निर्माण एवं निरूपण की दृष्टि से काफी महत्व है। भाषा को देश में सामाजिक संचार का महती माध्यम माना गया है। भारत बहुल संस्कृति वाला देश है, ऐसे में भाषा का राजनीतिक दृष्टि से महत्व और भी बढ़ जाता है। भाषा मानव अभिव्यक्ति का सबसे सशक्त माध्यम है। इसलिए सभी देशों की अपनी एक राष्ट्रभाषा होती है। जब किसी भी राजनीतिक व्यवस्था की राजनीति का विश्लेषण किया जाता है तो राजनीति पर भाषा के प्रभावों की विवेचना किये बिना विश्लेषण पूरा नहीं होता है। जहां तक भारत की राजनीति का सवाल है तो यथार्थतः यहां उत्तर भारत और दक्षिण भारत के बीच राजनीतिक संस्कृति के निर्माण-निरूपण की दृष्टि से मतदान व्यवहार में जो भिन्नता पायी जाती है, उसके मूल में दोनों क्षेत्रों के बीच भाषा की भिन्नता है।

भारतीय राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में क्षेत्रीयतावाद के संदर्भ का एक मुख्य पहलू भाषावाद भी है। आजाद भारत के सामने एक अहम सवाल था कि देश की राष्ट्रभाषा और उसकी लिपि क्या हो तथा देश के संवैधानिक राजनीतिक ढाँचे में भाषायी अल्पसंख्यकों को किस प्रकार का संरक्षण प्रदान किया जाय जिससे कि वे अपने आपको सुरक्षित महसूस कर सकें। संविधान द्वारा हिन्दी को राष्ट्रभाषा घोषित करने की बात हुई तो दक्षिण भारतीय हिन्दी भाषा का जबर्दस्त विरोध करने लगे। दक्षिण भारतीयों का ये कहना था कि वे हिन्दी को भारत की राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार नहीं करेंगे।

स्वतंत्र भारत में भाषा के आधार पर राज्यों के अस्तित्व-निर्माण एवं पुनर्गठन की प्रक्रिया आरंभ हुई। एक क्षेत्र विशेष के भारतीयों द्वारा भाषा का इस्तेमाल राजनीतिक हथियार के रूप में करने की प्रवृत्ति धीरे-धीरे बढ़ती गयी। राष्ट्रभाषा के सवाल को लेकर दक्षिण भारत और उत्तर भारत के राज्यों में आन्दोलन हुए जो धीरे-धीरे हिंसात्मक रूप अख्तियार करने लगा। राष्ट्रीय एकता-अखण्डता को अक्षुण्ण बनाये रखने के मार्ग में भाषागत आन्दोलन एक ताकतवर अवरोधक के रूप में खड़ा हो गया। वस्तुस्थिति यह थी कि दक्षिण भारत में हिन्दी का जबर्दस्त विरोध हुआ, बंगालवासियों ने उनसे थोड़ा कम विरोध किया और देश के अन्य हिस्सों में बसने वाले शिक्षित समुदायों द्वारा भी भाषागत आधार पर सीमित रूप में हिन्दी का विरोध किया गया।

यदि असम के राजनीतिक आन्दोलन की बात करें तो यह सत्य है कि सभी असम आन्दोलनों की प्रेरणा का स्रोत वहां मौजूद भाषा की राजनीति है। पिछले कुछ समय से महाराष्ट्र नवनिर्माण सेना के अध्यक्ष राज ठाकरे जिस तरह राष्ट्रीय भावनाओं को आहत करने वाली गतिविधियों का केन्द्र बने हुए हैं, उसका मूल आधारतत्त्व मराठी भाषा के आधार पर मराठियों में उत्तर भारतीय संस्कृति से पृथक्ता की प्रवृत्ति पैदा कराना है। अराजकता को आधार बनाकर राजनीति करने वाले राज ठाकरे द्वारा जो भाषागत राजनीति का गंदा खेल शुरू किया गया है उसपर स्वर्गीय बाल ठाकरे का प्रभाव एवं उद्भव ठाकरे की भी संलिप्तता भी दिखाई देती है। मुंबई नगरपालिका के कामकाज में हिन्दी को भी जगह देने की साधारण सी मांग पर उनके द्वारा भाषागत आधार पर जो विष वमन किया गया, उसकी कोई जरूरत नहीं थी। क्या यह मांग उठाना एक भारतीय के लिए गंभीर अपराध है। यदि भाषा के सवाल पर भारत के किसी एक राज्य में कुछ असंगत घटनाएं हुईं बाल ठाकरे तमिलनाडु का हवाला देते हुए बयानबाजी करते थे और ऐसे लोगों को जेल भेजने की बात करते थे।

महाराष्ट्र के सदन में 40 फीसदी सदस्य हिन्दी भाषी हैं फिर भी वहां इस भाषा में सीमित स्तर पर कामकाज की मांग करने का विरोध करना दरअसल भाषागत आधार पर बेकाबू होती क्षेत्रीयतावाद की प्रवृत्ति का सूचक है जो निश्चित रूप से भारत की राजनीतिक एवं सामाजिक समरसता, सद्भाव की लय को तोड़ने में महती भूमिका अदा कर रहा है।

भारतीय संविधान द्वारा स्पष्टीकरण के बावजूद राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी को स्वीकार करने के नाम पर मुखर विरोध का स्वर आज भी जिन्दा है और भाषागत राजनीतिक मंच आज भी अपनी जगह मजबूती से खड़ा है। भारतीय **संविधान की अनुसूची 8** में 14 भाषाएं शामिल थीं, जिसमें **21वें संशोधन, 1967** द्वारा सिंधी को जोड़ा गया, **71वें संशोधन, 1992** में नेपाली, कोंकणी और मणिपुरी को आठवीं अनुसूची में जोड़ा गया और **92वें संशोधन 2003** द्वारा बोडो, डोगरी, मैथिली और संथाली भाषा को आठवीं सूची में शामिल किया गया। अब तक कुल मिलाकर भारत में 22 भाषाओं को संवैधानिक स्वीकृति प्रदान की गयी है। **संविधान के भाग 17 की धारा 343** के तहत यह स्पष्ट किया गया है कि संघ की राजभाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी होगी विशेष निर्देश के रूप में अध्याय की **धारा 351** में हिन्दी भाषा के विकास के लिए आवश्यक निर्देश की बात की गयी है। संविधान की यह धारा स्पष्ट करती है कि संघ का यह कर्तव्य होगा कि वह हिन्दी भाषा के प्रसार में वृद्धि करे, उसका विकास करे ताकि यह भाषा भारत की सामाजिक संस्कृति के सभी तत्त्वों-आयामों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके और क्षेत्रीय भाषाओं की प्रकृति में हस्तक्षेप किये बिना आठवीं सूची में विनिर्दिष्ट भारत की अन्य भाषाओं में प्रयुक्त रूप शैली और पदों को आत्मसात् करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करें।

## भारत में भाषा एवं राजनीति की अन्योन्यक्रियाओं के खास बिन्दु

### (Main Points of Interactions Between Language and Politics in India)

उपरोक्त संवैधानिक प्रावधानों के बावजूद भाषा और राजनीति की अन्योन्यक्रिया के परिणामस्वरूप यदाकदा क्षेत्रीयतावाद से संदर्भित भाषा-विवाद का मुद्दा भारतीय राजनीतिक परिदृश्य में उबाल लाने में महती भूमिका निभाता रहता है। इस प्रसंग में **मॉरिस जोन्स** का कथन काफी प्रासंगिक है। इनके अनुसार क्षेत्रीयता और भाषा के प्रश्न भारतीय राजनीति के इतने ज्वलंत प्रश्न हैं और भारत में हाल में घटित राजनीतिक घटनाओं के साथ इनका इतना गहरा संबंध रहा है कि इससे यों प्रतीत होता है जैसे राष्ट्रीय एकता की सम्पूर्ण समस्या यही है। भाषा और राजनीति की अन्तःक्रियात्मकता को कुछ खास बिन्दुओं के परिप्रेक्ष्य में देखा जा सकता है:

1. **हिन्दी भाषा के विरोध की राजनीति**-भारत के अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में हिन्दी भाषा के विरोध में निरन्तर प्रदर्शन-आन्दोलन की राजनीति अपनायी जाती रही है। यदा-कदा ये आन्दोलनकारी उग्र रूप धारण करके हिंसात्मक वारदातों को अंजाम देते हैं। उदाहरणार्थ, दक्षिणी प्रान्तों में स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद से हिन्दी भाषा के विरुद्ध उग्र विरोध प्रदर्शन करते रहने का लम्बा इतिहास रहा है। वर्तमान समय में राज ठाकरे के नेतृत्व में मुंबई में महाराष्ट्र नवनिर्माण सेना के कार्यकर्ताओं की भूमिकाओं से हिन्दी विरोध का उग्र रूप सदैव सामने आता रहता है, जिसकी वजह से महाराष्ट्र से बड़े पैमाने पर उत्तर भारतीयों का पलायनहोता रहता है। देश में कई प्रान्तों की विधान सभाओं द्वारा हिन्दी के विरुद्ध क्षेत्रीय भाषा को राजकीय भाषा का दर्जा प्रदान करने के लिए अधिनियम पारित किया गया है।
2. **भाषागत आधार पर राज्यों का पुनर्गठन**-स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् 1956 में हुए राज्यों के पुनर्गठन में भाषा को विशेष तरजीह दी गयी, इसके मूल में तेलुगू नेता पोद्दटी श्री रामुलु द्वारा भाषा आधारित राज्यों की पुनर्गठन की मांग के लिए किये गये आन्दोलन में हुई मृत्यु की घटना को देखा जाता है। इस घटना ने पंडित नेहरू को भाषा आधारित राज्यों के निर्माण और पुनर्गठन पर गंभीरता से सोचने के लिए विवश कर दिया। पंजाब, बम्बई व असम आदि राज्यों का पुनर्गठन इसी आधार पर किया गयाथा। महाराष्ट्र, गुजरात, हरियाणा एवं चंडीगढ़ आदि के निर्माण का आधार भी मूलतः भाषा ही था।
3. **भाषायी दबाव समूहों का आविर्भाव**-भाषायी विरोध और समर्थन के आधार पर देश के विभिन्न हिस्सों में जन्मे भाषायी समूह धीरे-धीरे अपने समाज का समर्थन प्राप्त करके मजबूत व प्रभावशाली दबाव समूहों में तब्दील हो गये और केन्द्र तथा राज्य सरकार पर अपनी बात मनवाने के लिए दबाव बनाने लगे। इससे देश के अलग-अलग हिस्सों में भाषायी राजनीतिक मंच का अभ्युदय हुआ जो समय के साथ क्षेत्रीय राजनीति में मजबूती से अपने पाँव जमाता गया और अपने-अपने क्षेत्र की राजनीति की दिशा-दशा तय करने में निर्णायक भूमिका निभाने लगा। कई प्रदेशों में तो ये दबाव समूह क्षेत्रीय राजनीतिक दल का चोला पहन कर समय-समय पर अपनी प्रान्तीय राजनीति में अपनी स्थिति को मजबूत बनाने के लिए प्रयासरत दिखाई देते हैं। इसके एक खास नमूनों के रूप में महाराष्ट्र नवनिर्माण सेना और उसके नेता राजठाकरे को नित्य नये मुद्दों पर अपनी आवाज बुलंद करके अपनी राजनीतिक हैसियत के नवीनीकरण के लिए गंभीर रूप से प्रयास करते देखा जा सकता है।
4. **एक चुनावी मुद्दे के रूप में भाषा का राजनीतिकरण**-आज भारत के कई प्रान्तों में लोकसभा एवं विधानसभा के चुनावों में भाषा एक चुनावी मुद्दे की शकल में अपनी उपस्थिति दर्ज कराता है। चुनाव में भाषा के राजनीतिकरण का खेल ज्यादातर उर्दू भाषा को लेकर खेला जाता है। बिहार में जगन्नाथ मिश्र की सरकार में उर्दू भाषा को सरकारी

कामकाज की दूसरी भाषा के रूप में मान्यता प्रदान की गयी है। मिश्रा सरकार द्वारा यह निर्णय **संविधान की धारा 345** के आलोक में लिया गया था। जहां तक उत्तर और दक्षिण भारत के बीच भाषायी भिन्नता का सवाल है तो 1989 के लोकसभा चुनाव में भ्रष्टाचार के आरोपों के बावजूद श्री राजीव गांधी को दक्षिण भारत में सिर्फ इसी आधार पर प्रचंड बहुमत मिला, क्योंकि दक्षिण भारतीय मतदाता वी.पी. सिंह को हिन्दी भाषी राज्यों के प्रधानमंत्री के उम्मीदवार के रूप में देख रहे थे और कहीं न कहीं उनके अन्दर ये आशंका चल रही थी कि शायद वी.पी. सिंह की सरकार संवैधानिक प्रावधानों के तहत हिन्दी को देश की राष्ट्रभाषा का कानूनी अधिकार प्रदान कर देगी। इस प्रकार, लोकसभा और राज्यों की विधानसभाओं के चुनाव में भाषा एक महत्वपूर्ण राजनीतिक मुद्दा बन कर सामने आ रही है।

उपयुक्त विवेचित प्रसंगों के आलोक में यह कहा जा सकता है कि भारतीय राजनीति के परिप्रेक्ष्य में भाषा और राजनीति की अन्योन्यक्रिया का संदर्भ जनमत के निर्माण तथा मतदान व्यवहार के निरूपण में उल्लेखनीय भूमिका निभाता है। भाषा के राजनीतिकरण की वजह से आज भारतीय राजनीतिक संस्कृति में दो उपसंस्कृतियां पल रही हैं। एक उत्तर भारत की और दूसरी दक्षिण भारत की। राजठाकरे के नेतृत्व में मनसे कार्यकर्ताओं का मराठी बनाम हिन्दी आन्दोलन यदि ऐसे ही जारी रहा तो किसी जमाने में शिवसेना प्रमुख बाल ठाकरे द्वारा स्थापित भाषागत राजनीतिक उपसंस्कृति को देश के मौजूदा राजनीतिक परिदृश्य में नया आयाम मिलेगा।

### **भारत की राजनीति में सामाजिक वर्ग की भूमिका(Role of Social Class in Indian Politics)**

प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था में सामाजिक वर्गों की उपस्थिति एक सार्वभौमिक प्रसंग है। विश्व में ऐसा कोई समाज नहीं है जिसमें वर्गों की मौजूदगी न हो। आधुनिक समाजों में सामाजिक स्तरीकरण का मुख्य आधार वर्ग ही है। **रॉबर्ट बीर स्टीड** का मानना है कि प्रत्येक समाज में वर्ग-विभाजन या वर्ग-निर्धारण का कुछ मुख्य आधार होता है जो (1) सम्पत्ति, धन और आय, (2) परिवार एवं नातेदारी, (3) निवास की स्थिति, (4) निवास स्थान की अवधि, (5) व्यवसाय की प्रवृत्ति, (6) शिक्षा, और (7) धर्म पर आधारित होता है। जहां जाति मनुष्य के जन्म का द्योतक है वहीं वर्ग उसकी सामाजिक स्थिति का द्योतक है। कई समाजशास्त्रियों का मानना है कि भारतीय सामाजिक ढाँचे में जातियों व वर्गों में परिवर्तित हो रही हैं। इनके मतानुसार, औद्योगीकरण और शहरीकरण की वजह से जाति संरचना में परिवर्तन आया है। जाति के आर्थिक आधारों में परिवर्तन की वजह से जन्म का महत्त्व घटा है और जाति के अन्दर ही वर्ग का आविर्भाव होने लगा है। विभिन्न जातियों के लोग अलग-अलग वर्गों में शामिल हो रहे हैं। कई सामाजिक संगठनों के निर्माण का आधार जाति नहीं, अपितु वर्ग है। एक ही व्यवसाय में कार्यरत विभिन्न जातियों के लोगों के अन्दर वर्ग चेतना जगी है और जाति की जगह वर्ग के बैनर या झण्डे के नीचे एक ही मंच पर विभिन्न जातियों के लोग समवेत स्वर में अपनी मांगों को पूरा करने की गुहार सरकार से लगा रहे हैं।

इस तथ्य के आलोक में यह कहा जा सकता है कि जाति जहां एक बन्द संगठन का प्रतीक है, वहीं वर्ग खुले संगठन का द्योतक है जिसके बैनर तले विभिन्न जातियां सामूहिक रूप से इकट्ठी होकर अपने हितवर्द्धन के लिए खुलकर विचार विमर्श करती हैं। इस आधार पर राजनीति और वर्ग की अन्योन्यक्रिया से व्यवस्था में प्रभावशाली दबाव समूहों का आविर्भाव संभव हो पाता है। विगत कुछ दशकों से राजनीतिकदलों और सामाजिक वर्गों के बीच परस्पर संबंधों का तत्त्वमीमांसित अध्ययन करने का प्रयास जारी है। मतदान व्यवहार के तथ्यान्वेषण से यह तो स्पष्ट होता है कि वर्गीय हित, दलीय प्रतिबद्धता और मतदान व्यवहार के बीच घनिष्ठ संबंध हैं। विश्लेषणपरक शोधों से यह तथ्य उभरता है कि राजनीतिक दलों के अधिकांश नेता समाज के विभिन्न वर्गों के हितों का प्रतिनिधित्व करते हैं और अधिकांश मतदाता अपने वर्गीय हितों को ध्यान में रखते हुए मतदान व्यवहार का प्रस्तुतीकरण करते हैं। मतदान व्यवहार पर किये जाने वाले शोधकार्यों से यह पता चलता है कि मतदाता की सामाजिक आर्थिक स्थिति का मतदान कार्य पर सबसे ज्यादा प्रभाव पड़ता है।

भारतीय राजनीति के परिप्रेक्ष्य में वर्ग की भूमिका और महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए **योगेन्द्र सिंह** ने कहा है कि "भारत में जाति तथा वर्ग परस्पर संबद्ध हैं, क्योंकि उच्च जातियों के लोग जिनका सामाजिक स्तर ऊंचा है वे आर्थिक दृष्टि से संपन्न होने की वजह से उच्च वर्ग से संबंधित हैं। प्रत्येक गांव में एक प्रबल जाति की मौजूदगी होती है जिसका सामाजिक स्तर तो ऊंचा होता ही है, अधिकांश भूमि पर भी उसी जाति का स्वामित्व होता है, इसलिए वह आर्थिक दृष्टि से भी संपन्न होता है।" इनका मानना है कि भारतीय सामाजिक ढाँचे में जाति व्यवस्था इतनी मजबूत रही है कि इसने वर्ग व्यवस्था को कभी उभरने ही नहीं दिया है।

इस प्रकार, भारत में वर्ग एवं राजनीति की अन्योन्यक्रिया के परिणामस्वरूप मतदान व्यवहार का निर्धारण होता है और चुनावी राजनीति के नये आयामों का निरूपण होता है। हालांकि यह सत्य है कि भारत की चुनावी राजनीति में जातियों की भूमिका ज्यादा प्रधान है, लेकिन औद्योगीकरण, शहरीकरण, उदारीकरण आदि के युग में सामाजिक वर्ग भी देश की राजनीति की दिशा-दशा तय करने में निर्णायक की भूमिका अदा कर रहा है।

## निष्कर्ष ( Conclusion)

भारत में राजनीतिक प्रक्रियाओं के परिप्रेक्ष्य में राजनीति और समाज की अन्योन्यक्रियाओं के विश्लेषणपरक अध्ययन से इस निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है कि भारतीय राजनीति को नया आयाम व नई मजबूती प्रदान करने में समाज के सभी पक्षों की भूमिका काफी प्रासंगिक है। जाति, धर्म, साम्प्रदायिकता, क्षेत्रीयता, भाषा और वर्ग को राजनीति और समाज की अन्योन्यक्रियाओं के प्रमुख तत्त्वों के रूप में चिन्हित किया गया है। वस्तुतः भारतीयव्यवस्था, मंत्राजनीतिक प्रक्रियाएं एवं राजनीतिक व्यवहार का मूल आधारतत्त्व है सामाजिक पर्यावरण, सामाजिक गतिविधियां एवं सामाजिक व्यवहार। भारत के राजनीतिक विकास एवं आधुनिकीकरण में सामाजिक संरचनाओं का योगदान काफी महत्त्वपूर्ण है। स्वाधीनता संघर्ष से लेकर 67वर्षों के आजाद भारत की राजनीति के स्वरूप-निर्धारण में यहां के सामाजिक कारकों-परिवर्त्यों की भूमिकाएं काफी प्रासंगिक रही हैं। सामाजिक परिवर्तय ही राजनीतिक परिवर्तयों के स्वरूप का निर्धारक होता है। यही वजह है कि भारत की राजनीति का समाजशास्त्रीय अध्ययन किये बगैर कोई भी राजनीतिशास्त्रवेत्ता भारतीय राजनीति का तत्त्वमीमांसित अध्ययनकर्ता नहीं हो सकता है। यहां की राजनीति की प्रकृति-प्रवृत्ति को समझने के लिए प्रासंगिक सामाजिक आयामों की गहन जानकारी रखना अति आवश्यक है। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि भारत का बहुल समाज ही भारतीय राजनीति की रीढ़ है। इसीलिए कहते हैं कि यहां की राजनीति को समझने की मास्टर चाबी यहां के समाज में निहित है।

## स्मरणीय संकेत(Points to Remember)

- भारतीय राजनीति को जानने-परखने की कुंजी देश की सामाजिक व्यवस्था-प्रक्रियाओं एवं सामाजिक व्यवहार के स्वरूप में निहित है।
- स्वतंत्र भारत की राजनीति पर मुख्य रूप से चार कारकों का सीधा प्रभाव पड़ा है-प्राचीन हिन्दू समाज का प्रभाव, भारत में आये विदेशी मुसलमान शासकों का प्रभाव, ब्रिटिश शासकों का प्रभाव और स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान एशिया में उदित हुए राष्ट्रवाद और नवजागरण का प्रभाव।
- भारतीय राजनीति का समाजशास्त्रीय अध्ययन करने वाले विद्वज्जनों में-आल्मंड, कोलमैन, रुडोल्फ एण्ड रुडोल्फ, रॉबर्ट एल. हार्डग्रेव, टिंकर एण्ड पार्क, रजनी कोठारी, योगेन्द्र सिंह, वी.आर. मेहता, घनश्याम शाह, आदि प्रमुख हैं।
  - प्रो. कोठारी द्वारा जाति व्यवस्था में लोच और परिवर्तनशीलता को कायम रखने के लिए चार मार्गों का संकेत किया गया है-सांस्कृतिककरण, लौकिकीकरण, महापुरुषों के साथ संबंध जोड़ना, आधुनिक राजनीति में सहभागिता। प्रो. कोठारी द्वारा जातियों के राजनीतिकरण पर विशेष दृष्टिकोण की प्रस्तुति करते हुए उसे तीन चरणों में बांटा गया है-शक्ति एवं प्रभाव की प्रतिद्वन्द्विता, जाति के अन्दर प्रतिद्वन्द्वी गुट, जाति बंधन का दुर्बल होना और राजनीति का व्यापक आयाम।
- भारतीय राजनीति मेंक्षेत्रीयतावाद के मुख्य कारक हैं- भौगोलिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, भाषा, जाति एवं राजनीति।
- भारतीय राजनीति में धर्म एवं साम्प्रदायिकता के प्रमुख आयाम-धर्म एवं राजनीतिक दल, धर्म और चुनावी राजनीति, धार्मिक दबाव समूह और राजनीति, मंत्रिमंडल-निर्माण में धर्म की प्रधानता, क्षेत्रीय राजनीति में धर्म की प्रधानता।
- राजनीति और साम्प्रदायिकताका मुख्य आयाम है- मुस्लिम सम्प्रदाय में मौजूद पृथक्करण की प्रवृत्ति शैक्षणिक एवं आर्थिक पिछड़ापन, पाकिस्तानी सरक्षण एवं प्रचार, हिन्दू संगठनों की संकीर्ण मानसिकता, सरकारी निर्णय एवं कार्यशैली।
- नातेदारी भारतीय सामाजिक संरचना का मुख्य आधार है और इसका भारतीय राजनीति के साथ गहरा संबंध है। देश की राजनीति में वंशवाद एवं परिवारवाद की मौजूदगी नातेदारी और राजनीति के गहरे संबंध का द्योतक है।
- भाषा और राजनीति की अन्योन्यक्रिया का संदर्भ देश की राजनीतिक संस्कृति के निर्माण एवं निरूपण से सीधा सरोकार रखता है। भाषा और राजनीति की अन्योन्यक्रिया का खास बिन्दु है-- भाषागत आधार पर राज्यों का पुनर्गठन, भाषायी दबाव समूहों का आविर्भाव, एक चुनावी मुद्दे के रूप में भाषा का राजनीतिकरण।
- सामाजिक वर्ग और राजनीति-भारत में सामाजिक वर्ग और राजनीति की अन्योन्यक्रिया के परिणामस्वरूप मतदान व्यवहार का निर्धारण और निरूपण होता है जिससे चुनावी राजनीति को नया आयाम प्राप्त होता है।